भारतीय दर्शन मे बौद्ध ज्ञानमीमांसा के महत्व का चिन्तन

डॉ शीतांशु पाण्डेय
दर्शनशास्त्र विभाग
कोशी कालेज,खगडिया

भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायो मे बौद्ध दर्शन एक महत्वपर्ण स्थान रखता है। अपने तत्वमीमांसीय, ज्ञानमीमांसीय और नीतिमीमांसीय दृष्टिकोणो की विविधता सम्पूर्ण भारतीय दर्शन की चिन्तन परम्परा को पुरातन काल से ही समृद्ध करता आया है।प्रस्तुत शोधपत्र मे भारतीयदर्शन के सन्दर्भ मे बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

भारतीय दर्शन में सत् विषयक दो भिन्न प्रकार की तत्वमीमांसीय दृष्टियों का प्रतिनिधित्व करती हुए दो भिन्न धाराएं– न्याय दर्शन व बौद्ध दर्शन की विकसित हुई, जिनका हजारों वर्षों तक चलने वाला वैचारिक संघर्ष ज्ञानमीमांसीय दृष्टिकोण का ज्वलन्त उदाहरण रहा है। प्रायः सभी आस्तिक दर्शनों में 'मानाधीनामेय सिद्धिः'अर्थात 'प्रमेय की सिद्धि प्रमाणों द्वारा होती है',की मान्यता है जबकि बौद्ध दर्शन 'मेयाधीनमानसिद्धिः' की धारणा को स्वीकार करते है जिससे अभिप्राय है कि प्रमाणों की सिद्धि प्रमेय के अधीन होती है। ये दोनों ही प्रकार की प्रमाणमीमांसीय संरचनाएं अपने–अपने तरह से तत्वमीमांसा व प्रमाणमीमांसा के सम्बन्ध को व्याख्यायित करती हैं जिससे कि प्रमाणों का स्वरूप ,संख्या,फल इत्यादि निर्धारित होते है। अपने तत्वमीमांसीय प्रतिमानो के आधार पर ज्ञानमीमांसीय विवेचन भारतीय दर्शन की चिन्तन परम्परा को और अधिक समृद्ध करता है।बौद्ध ज्ञानमीमांसीय चिन्तन के कुछ प्रमुख बिन्दु जो कि बौद्ध दर्शन का विशिष्टता के परिचायक है इस प्रकार है–

यथार्थ ज्ञान के सम्बन्ध में बौद्ध आचार्य धर्मकीर्ति ने सकल पुरूषार्थसिद्धि के लिए 'सम्यक् ज्ञान' को आवश्यक बतलाया है[1] तथा इसको अविसंवादक और अविदित विषय वाला बताया है जो यथार्थ ज्ञान के विषय में उनकी विशिष्टता का परिचायक है। आचार्य धर्मकीर्ति के मत में प्रमाण का लक्षण 'प्रमाणम्विसंवादी ज्ञानम्' दिया गया है[2] यहां अविसंवादी का अर्थ है उपदर्शित वस्तु को प्राप्त करा देने वाला ज्ञान'। यह ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान कहलाता है। यहाँ इसका अर्थ अविपरीत ज्ञान नहीं है क्योंकि अविपरीत ज्ञान यह लक्षण करने से यह मत

योगाचार के मत में संगत नहीं होगा क्योंकि इनके मत में 'सर्वमालम्बने भ्रान्त मुक्त्वा तथागतं ज्ञानम्' अर्थात् तथागत के ज्ञान से भिन्न सभी ज्ञान भ्रान्त होते है साथ ही यह मत सौत्रान्त्रिक के अनुमान में भी घटित नहीं होगा क्योंकि अनुमान भी अनर्थ में अर्थ का ग्राहक माना जाता है। इसलिए सम्यक् ज्ञान को अविसंवादक ज्ञान कहा गया है जो व्यवहारिक प्रमाण का लक्षण है तथा जो योगाचार तथा सौत्रान्त्रिक दोनों मतों में संगत हो जाता है।क्योंकि जब कोई ज्ञान अविसंवादक होता है तभी उसके विषय में यह जाना जाता है कि यह अज्ञात अर्थ का बोधक है, विसंवादी ज्ञान तो अर्थ का प्रकाशक ही नहीं माना जाता है। सम्यक् ज्ञान दो प्रकार का है—प्रत्यक्ष और अनुमान।[3]

धारावाही ज्ञान के सन्दर्भ मे महत्वपूर्ण यह है कि धारावाही ज्ञान अविसंवादी होकर प्रमाण की कोटि में नहीं रखा जाता क्योंकि वह अज्ञात विषय का बोधक नहीं होता। धारावाही ज्ञान के संदर्भ में केवल बौद्ध दर्शन है जो कि इसे ज्ञान के रूप में स्वीकार नहीं करता, जबकि अन्य दर्शन धारावाही ज्ञान को प्रमाण की कोटि में रखते है यह अपने आप मे बौद्धों की दर्शन जगत में महत्वपूर्ण देन है।

क्षणिकवाद ज्ञानमीमांसीय तत्वों के विवेचन में मूलरूप से विद्यमान रहा है क्षणिकवाद के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है कि प्रत्यक्ष द्वारा वस्तु के स्वलक्षण का ज्ञान होता है अर्थात् एक क्षण का ज्ञान होता है तो निश्चयात्मक ज्ञान की व्याख्या किस तरह होगी ?इसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि परमार्थ सत् वस्तु स्वलक्षण है यह स्वलक्षण क्षणमात्र का होता है यही प्रत्यक्ष का ग्राह्य विषय है, चूंकि एक क्षण को कोई प्राप्त नहीं किया जा सकता अतएव कारण—कार्य भाव से व्यवस्थित उन क्षणों के प्रवाह द्वारा जिसको कि क्षण संतान कहते है, उसे प्रवृत्ति का विषय बना दिया जाता है जिससे निर्विकल्पक प्रत्यक्ष के अनन्तर होने वाले निश्चयात्मक ज्ञान की व्याख्या क्षणसन्तान के माध्यम से की जाती है।

बौद्ध दर्शन के अनुमान प्रमाण का अवलोकन करने पर अनुमान की व्याख्या में अन्य दार्शनिक सम्प्रदायो से स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है बौद्ध न्याय में कथनों के माध्यम से

प्राप्त ज्ञान अनुमानात्मक ज्ञान कहलाता है जबकि अन्य सम्प्रदायों में प्रत्यक्ष के अनन्तर होने वाला दूसरे प्रकार का साधन अनुमान कहलाता है।

केशवमिश्र ने साहचर्य नियम को व्याप्ति कहा है।[4] बौद्धन्याय में साहचर्य नियम रूप व्याप्ति की जगह स्वभावप्रतिबन्ध नामक व्याप्ति को आवश्यक बताया जाता है नैयायिक का यह आक्षेप है कि अनेक उदाहरण ऐसे होते है जहां व्याप्ति तो होती है परन्तु दोनों में कोई निमित्त नहीं होता यथा शरद ऋतु में निर्मल जल को देखकर अगस्त्य नक्षत्र का अनुमान किया जाता है तथा चन्द्रोदय को देखकर समुद्र की वृद्धि तथा कुमुद विकास का अनुमान हो जाता है।[5] इन उदाहरणों में व्याप्ति साहचर्य से माननी चाहिए ना कि तादात्म्य तदुत्पत्ति से। जबकि बौद्ध न्याय की मान्यता है कि तादात्म्य तदुत्पत्ति से ही अविनाभाव सम्बन्ध आवश्यक है अन्यथा कोई भी पदार्थ किसी भी वस्तु का साधक होने लगेगा, उपरोक्त उदाहरण में भी साक्षात या परम्परया तादात्म्य व तदुत्पत्ति विद्यमान है उदाहरण के लिए जल की निर्मलता तो अगस्त्योदय का कार्य है चन्द्रोदय व समुद्रवृद्धि आदि की उत्पत्ति एक सामग्री के अधीन आएगा यही तदुत्पत्ति निमित्त है अतएव तादत्म्य व तदुत्पत्ति को आत्मसात करती हुई बौद्ध व्याप्ति बौद्ध न्याय का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ के रूप मे प्रतिष्ठित है।

भारतीय दर्शन के महत्वपूर्ण विषय के रूप मे अभाव का ज्ञान विद्यमान रहा है। बौद्ध अभाव ज्ञान के लिए अनुपलब्धि को अतिरिक्त प्रमाण नहीं मानते। वह अभाव की सत्ता को स्वीकार करना दार्शनिकता नही मानते हैं केवल अभाव प्रतीति का निश्चय अनुपलब्धि हेतु द्वारा स्वीकार करते हैं। बौद्ध न्याय मे अनुपलब्धि से दृढ होता अभाव का निश्चय प्रत्यक्ष के द्वारा उत्पादित व अनुपलब्धि लिंङ् से प्रवर्तित होता है।[6] बौद्ध न्याय की विशिष्टता इस बात में है कि सांख्य की भांति केवल उपलब्धि के न होने मात्र से अभाव का निश्चय नहीं होता और न ही भूतल आदि का ज्ञान ही घट आदि के अभाव का निश्चायक है अपितु एकज्ञानसंसर्गी वस्तु भूतल आदि तथा उसके ज्ञान से दृश्य वस्तु के अभाव का निश्चय होता है उपलब्धि का होना मात्र व भूतल आदि के ज्ञान को हेतु इसलिए नहीं माना जा सकता क्योंकि इनका स्वरूप निश्चय नहीं किया जा सकता।

बौद्ध परम्परा का महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि परार्थानुमान आगम प्रमाण को अपने में समाहित कर लेता है यह इसलिए कि बुद्ध के ज्ञान को दूसरे में संक्रान्त नहीं किया जा सकता, तथा उनके उपदेशों के वैदिकों के शब्द प्रमाण की तरह आगम प्रमाण में ग्रहीत किया जाना वर्जित है इसलिए तथागत के समस्त वचन वास्तव में 'हेतु वचन' होने से तैर्थिकों के आगम प्रमाण की तरह नही बल्कि परार्थानुमान रूप ही है। इस प्रकार बौद्ध न्याय में शब्द के प्रमाण की स्वीकृति नही है।[7]

भारतीय दर्शन मे बौद्ध दर्शन की ज्ञानमीमांसा का अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा है इनकी तर्कसंगत व वैज्ञानिक व्याख्या न केवल भारतीय दर्शन को समृद्ध किया बल्कि वैश्विक विमर्श में भी अपना स्थान स्थापित किया और अपने तत्वमीमांसीय स्वरूप के कारण विभिन्न स्तरो पर अन्य दर्शनो के साथ उनका विभेद स्पष्टतया देखा जाता रहा है पर यह विभेद भारतीय दर्शन के चिन्तन परम्परा को तथा बौद्ध मत को और अधिक समृद्ध करता है।

संदर्भ सूची

1. सम्यकज्ञापूर्विका सर्वपुरूषार्थ सिद्धिरिति व्युत्पाद्यते।न्यायबिन्दु
2. प्रमाणवार्तिक, परिच्छेद 1.3
3. द्विविधं सम्यक ज्ञानम्। न्यायबिन्दु, प्रथम परिच्छेद, पृ0 10
4. साहचर्यानियमोंप्याप्तिः, तर्कभाष्य।
5. बिजल्वान,चक्रधर(1983),भारतीय न्यायशास्त्र,उ0प्र0हिन्दी संस्थान,लखनऊ
6. न्यायबिन्दु टीका,2.28
7. अम्बिकादत्त शर्मा(2007),बौद्ध प्रमाण दर्शन,डी0के0प्रिन्टरवर्ल्ड(प्रा.)लि0,नई दिल्ली